3. रीतिकाल
(सन् 1643 से 1843 ई० तक)

नामकरण

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने ग्रन्थ हिन्दी साहित्य का इतिहास में संवत् 1700 से संवत् 1900 (सन् 1643 से 1843) तक के काल को उत्तर मध्यकाल अथवा रीतिकाल नाम दिया है। जिसमें सामान्य रूप से शृंगार परक लक्षण ग्रन्थों की रचना हुई। नामकरण की दृष्टि से इस काल को विभिन्न विद्वानों ने अनेक नामों से पुकारा है। मिश्रबन्धु इसे अलंकृत काल मानते हैं, पं. विश्वनाथ प्रसाद शृंगारकाल संज्ञा देते हैं तो किसी ने इसे कला काल कहा है परन्तु इनमें से कोई प्रदत्त रीतिकाल के समान प्रचलित और स्वीकृत न हो सका। यद्यपि इसकाल में शृंगारपरक रचनाओं की ओर कवियों का ध्यान विशेष रहा है, परन्तु नीति, भक्ति और वीर भावना को आधार मानकर रचना करने वाले कवि भी कम नहीं थे। इसलिए इस काल को शृंगारकाल कहना अनुपयुक्त होगा।

इस काल को कलाकाल अथवा अलंकारकाल कहना भी एकांगी विचार होगा क्योंकि इस नाम को स्वीकार करने से इस काल की कविताओं का भाव पक्ष छूट जाता है। इस काल में रीति पद्धति पर लिखने की प्रवत्ति का बोलबाला रहा। इसलिए इस काल को रीतिकाल कहना ही उपयुक्त होगा।

रीति शब्द की व्याख्या और रीतिकाव्य का लक्षण –

संस्कृत काव्यशास्त्र में 'रीति' शब्द काव्यांग विशेष के लिए रूढ़ है। जिसे काव्य की आत्मा बताकर आचार्य वामन ने तत्सम्बन्धी अलग सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। आचार्य वामन के अनुसार गुण विशिष्ट रचना अर्थात् पद संघटना – पद्धति विशेष का नाम 'रीति' है। व्याकरण के अनुसार गति अर्थक 'रीङ्.' धातु के साथ 'क्तिच्' प्रत्यय लगने से यह 'मार्ग' का वाचक ठहरता है। संस्कृत काव्य शास्त्र में रीति शब्द काव्यरचना के मार्ग अथवा पद्धति विशेष के अर्थ में प्रयुक्त हुआ, व्यवहार में लाया गया है। हिन्दी के मध्ययुगीन कवियों में भी अनेक ने काव्य रचना पद्धति को 'रीति' और उसके पर्याय 'पंथ' से ही अभिहित किया है।

1. जैसे कवि देव ने कहा– अपनी अपनी रीति के काव्य और कवि रीति
2. कवि भूषन ने कहा – सुकविन हूँ कि कछु कृपा समुझि कविन को पंथ (शिवराज भूषन)
3. कवि चिन्तामणि –रीति सुभाषा कवित्त की बरनत बुध अनुसार (कवि कुल कल्पतरु)

हिन्दी के आधुनिक इतिहासकारों और आलोचकों ने भी रीति शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है।

मिश्र बन्धुओं के अनुसार आचार्य लोग तो कविता करने की रीति सिखलाते हैं, मानो वे संसार से कहते हैं कि अमुक–अमुक विषयों के वर्णन में अमुक के कथन उपयोगी हैं और अमुक प्रकार के अनुपयोगी। (मिश्र बन्धु विनोद भाग–2)

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'रीति काव्य' वह काव्य है जिसकी रचना विशिष्ट पद्धति अथवा नियमों को ध्यान में रखकर की गई हो। हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्य काल में अधिकांश

कवियों ने संस्कृत काव्य– शास्त्र की बँधी हुई परिपाटी पर अपने काव्य की रचना की। इसलिए आज उनके काव्य को रीतिकाव्य और उनको रीतिकवि कहते हैं।

रीतिकालीन परिस्थितियाँ –

साहित्य के निर्माण में उस युग के वातावरण का विशेष योगदान होता है।

अतः किसी भी काल की साहित्यिक गतिविधियों को यथार्थ रूप से समझने के लिए उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, कलात्मक और साहित्यिक परिस्थितियों का अध्ययन आवश्यक होता है। इस कारण यदि रीतिकाल का अध्ययन करना है तो उसकी प्रेरक परिस्थितियों का अध्ययन भी आवश्यक है।

तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ :– हिन्दी साहित्य में रीतिकाल संवत् 1700 से 1900 तक माना जाता है। इस समय में निरंकुश राजतन्त्र का बोलबाला था। अकबर के बाद जहाँगीर ने राज्य के सम्बन्ध में कोई विशेष योगदान नहीं किया। उसकी विलासिता और असन्तुलित लालसा उसके उत्तराधिकारियों को विरासत में मिली।

केन्द्र में शक्तिशाली सत्ता विराजमान थी। राजा और सामन्त उनके अधीन थे। उत्तर भारत के अधिकांश राजा स्वदेश रक्षण हेतु नहीं लड़ते थे, वे तो अपने स्वामियों के लिए अथवा अपने झूठे अहंकार के लिए लड़ते थे। शाहजहाँ का काव्य की ओर विशेष झुकाव था। राजाओं में प्रदर्शन प्रवृत्ति अधिक थी।

शाहजहाँ की मृत्यु के पश्चात् सत्ता के लिए संघर्ष प्रारम्भ हो गया। औरंगजेब अपने ही भाइयों का कत्ल कर बादशाह बना। उसकी नीति असहिष्णुता की थी। हिन्दुओं में जातीय स्वाभिमान जगने लगा। छत्रपति शिवाजी और छत्रसाल जैसे वीर राजाओं ने मुगल सत्ता से लोहा लेना प्रारम्भ किया। पंजाब में गुरु गोविन्द सिंह ने धर्म रक्षण के लिए खालसा पंथ की स्थापना कर मुगलिया सत्ता से टकराना प्रारम्भ कर दिया था।

औरंगजेब की मृत्यु पश्चात् केन्द्र की राजसत्ता ढीली पड़नी शुरू हो गई थी। उसके साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया था। अनेक देशी राजा स्वतन्त्र आचरण करने लगे थे। अंग्रेजों ने धीरे–धीरे भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। राजमहल आनन्द–प्रमोद और भोग–विलास के केन्द्र बन गए थे। रीति कालीन काव्य पर इसका असर पड़ना स्वाभाविक था। इसलिए इस काल के साहित्य पर भोग विलास और तज्जन्य सौन्दर्य बोध का गहरा प्रभाव पड़ा। भूषण जैसे कुछ ही कवि थे जिन्होंने वीर रस की रचना कर जनता के स्वाभिमान को जगाने की चेष्टा की थी।

समाजिक परिस्थिति –

बादशाहों और राजाओं की विलास लिप्सा और वैभव प्रियता का सामन्तीय जीवन पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा। अमीर–उमराव और सामन्त जनता का शोषण करते थे। उनसे लिए कर से भोग विलास के साधन एकत्र करते थे। राजाओं में ही नहीं सामन्तों और अभिजात्य वर्ग में बहुपत्नीत्व का चलन था। नारी के प्रति सम्मान का भाव कम हो गया था। गरीब जनता अकाल–महामारियों से तो त्रस्त थी ही, सामन्तों के शोषण की चक्की में भी पिस रही थी।

अंधविश्वास बढ़ रहे थे। राष्ट्रीयता की भावना लुप्त प्रायः हो गई थी। इसलिए रीतिकाल के लेखक में भी समाज और राष्ट्र के प्रति लगाव के दृष्टिकोण का भाव अत्यन्त न्यून मात्रा में ही दिखाई देता है।

धार्मिक परिस्थितियाँ –

इस युग में सभ्यता और संस्कृति का ह्रास हो रहा था। नैतिकता का अभाव हो रहा था। अन्धविश्वास, रूढ़ियाँ और बाह्याडम्बर ही धर्म कहलाते थे। राधा और कृष्ण की भक्ति की सात्विकता का स्थान स्थूल ऐंद्रियकता और शृंगारिकता ने ले लिया था। भक्तिकाल के राधा कृष्ण के प्रेम का आध्यात्मिक तत्व लुप्त प्रायः हो गया था।

कलात्मक एवं साहित्यिक परिस्थितियाँ –

मुगलकाल के दौरान शिल्पकला, चित्रकला और संगीत कला ने पर्याप्त प्रगति की थी। परन्तु जीवन के अन्य क्षेत्र के समान कलाक्षेत्र में भी प्रदर्शन की ही प्रमुखता रही। इन सभी कलाओं में उस युग की सभी प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। परम्पराबद्ध शैली, अलंकार की अतिशयता, चमत्कारवृत्ति रोमानी वातावरण की सृष्टि करना, कला और साहित्य सभी क्षेत्रों में दृष्टिगोचर हो रही थी। वास्तव में रीतिकाल के कवि, चित्रकार, कलाकार और संगीतज्ञ सभी आश्रयदाताओं की कृपा पर पल रहे थे और आश्रयदाता के अलंकार प्रिय और विलासी होने के कारण उनकी रुचि और प्रसन्नता के लिए ही कवि–कलाकार और संगीतज्ञ स्वतन्त्र दृष्टि से सृजन नहीं कर पा रहे थे। इसलिए इनमें भी चमत्कार प्रदर्शन, शृंगारपरकता और पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति दिखाई देती है। तथापि इस काल को कला और साहित्य की दृष्टि से समृद्धकाल कह सकते हैं।

रीतिकाव्य की विशेषताएँ –

साहित्यकार और उसके साहित्य पर काल विशेष की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। रीतिकाल में भी हिन्दी साहित्य पर तत्कालीन परिस्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ा है। परिस्थिति से प्रेरित और पुष्ट होकर जो प्रवृत्तियाँ सामने आईं, उनमें आचार्यत्व, शृंगारिकता, आलंकारिता आदि मुख्य हैं। रीति कालीन साहित्य की सृष्टि सामन्तीय वातावरण में हुई। तत्कालीन राजदरबारी कवियों से 'स्वान्तः सुखाय' काव्य रचना की अपेक्षा नहीं की जा सकती। स्वामी को प्रसन्न करने के लिए प्रदर्शन प्रवृत्ति अधिक रही। शृंगाररस की प्रधानता में प्रेम का स्थान रसिकता ने ले लिया।

1. शृंगारिकता की भावना :– रीतिकालीन काव्य में शृंगारिकता की भावना की प्रधानता है। शृंगारिकता की प्रवृत्ति रीतिकवियों की कविता का प्राण है। इस समय का भौतिक वातावरण भी शृंगारिक मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल था। शृंगारपरक रचनाएँ भक्ति काल में भी होने लगी थी। कृष्णभक्ति काव्य और रामभक्ति काव्य में भी रसिक भाव की प्रतिष्ठा हो चुकी थी परन्तु रीति काल में तो कवियों ने उन्मुक्त भाव से शृंगार सरिता में गोते लगाए हैं। शृंगार वर्णन रीतिकाव्य की प्रमुख

प्रवृत्ति रही है नायक–नायिका भेद, नख–शिख वर्णन, अलंकार आदि के लक्षण प्रस्तुत करते समय भी श्रृंगार का ही प्रतिपादन किया है।

2. आचार्यत्व का प्रदर्शन – इस काल के कवियों में शृंगारिकता के बाद जो प्रमुख प्रवृत्ति दिखाई देती है वह है आचार्यत्व का प्रदर्शन। रीतिकाल में कविकर्म और आचार्य कर्म एक साथ चलते रहे। इस काल के लगभग सभी कवियों ने लक्षणग्रन्थों का निर्माण किया हैं। यद्यपि अधिकांश कवियों ने लक्षणग्रन्थों में नाम पर संस्कृत साहित्य शास्त्र का अनुवाद सा ही किया है। कवि कर्म के लिए भावुक हृदय और कोमल भावना का होना आवश्यक है और आचार्य कर्म के लिए बुद्धि की परिपक्वता और विवेचन शक्ति की आवश्यकता रहती हैं। कह सकते हैं कि लक्षणग्रन्थों का निर्माण कर परिपाटी का पालन ही कवि करते रहे, आचार्य कर्म में सफल नहीं हो पाए।

3. **आलंकारिकता :–** वह युग ही प्रदर्शन, चमत्कार और रसिकता प्रधान था। इसलिए कवियों ने भी अपनी कविता में उक्तिचमत्कार द्वारा अपने आश्रयदाताओं और श्रोताओं को रिझाना था। वातावरण ही ऐसा था कि अलंकार शास्त्र के ज्ञान के अभाव में उस समय के कवि को आदर मिलना कठिन था। इसलिए कवि को कविता कामनी को अलंकार के साँचे में ढालना आवश्यक था।

उस काल में शब्दालंकारों में यमक, अनुप्रास और श्लेष का प्रयोग कविता में चमत्कार लाने के लिए खूब हुआ। बिहारी में तो यह प्रवृत्ति सर्वाधिक पाई जाती है। विरोधाभास और उत्प्रेक्षा जैसे अलंकारों का सफल प्रयोग तो रीतिमुक्त कवि घनानन्द ने भी किया है।

4. **ब्रजभाषा की प्रधानता –** प्रकृति से मधुर और सरस होने के कारण रीतिकाल के काव्य में ब्रजभाषा की प्रधानता दिखाई देती है। ब्रजभाषा का सहज, सरल, कोमल और परिष्कृत रूप रीतिकाव्य में देखने को मिलता है। भारतीय साहित्य में संस्कृत के बाद ब्रजभाषा का स्थान प्रमुख है। प्रकृति से मधुर होने के कारण और कोमल रसों की अभिव्यक्ति के लिए अधिक उपयुक्त होने के कारण ब्रजभाषा का प्रयोग अधिक हुआ है। इस काल में कवियों ने ब्रजभाषा के साथ अवधी, बुन्देलखंडी और उर्दू–फारसी के शब्दों का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में किया है। ब्रजभाषा के माधुर्य का ही परिणाम था कि उस काल के मुसलमान कवियों ने भी इसी भाषा का प्रयोग अपने काव्य में किया है।

5. वीरकाव्य – रीतिकाल में यद्यपि श्रृंगारिकता की प्रवृत्ति ही कवियों में अधिक थी तथापि गौणरूप से वीरतापरक रचनाएँ भी इस काल में रची गई। विशेष रूप से औरंगजेब की धर्मान्धता, कट्टरता और असहिष्णुता ने हिन्दुओं की सुषुप्त वीरता को जगाने का कार्य किया। परिणाम स्वरूप अनेक राजा प्रतिकार के लिए खड़े हो गये और अनेक कवियों ने वीर रस पूर्ण काव्य रचना कर लोगों में उत्साह भरने का कार्य किया। इनमें भूषण, सूदन, पद्माकर प्रमुख हैं।

6. भक्ति और नीति– रीति काव्य में जहाँ शृंगार की प्रधानता, आचार्यत्व का प्रदर्शन और चमत्कार हेतु अलंकारों के प्रति मोह रहा वहीं नीति और भक्ति के पद भी रचे गए। वैसे लगभग प्रत्येक कवि ने मंगलाचरणों में अथवा ग्रन्थों की परिसमाप्ति पर आशीर्वचनों में भक्ति सम्बन्धी पद रचे हैं। इसकाल के कवि ने भक्ति सम्बन्धी पद लिखते समय भी शृंगारिकता का सहारा ही अधिक

लिया है। कवियों का ध्येय होता था आश्रयदाताओं को रिझाना। यदि आश्रयदाता कविता से प्रसन्न नहीं हुआ तो कविता के बहाने राधा–कृष्ण का सुमरिन हो जाता था।

रीझि है सुकवि तो जानो कविताई, न तो राधिका सुमिरन को बहानो है।

नीति सम्बन्धी पद शतक ग्रन्थों में पर्याप्त मिलते हैं। वैसे उस युग के कवियों की नीति और भक्ति की प्रवृत्ति के विषय में डा. नगेन्द्र कहते हैं ''भक्ति यदि इन कवियों के आकुल मन की शरण भूमि थी तो नीति संघर्षमय दरबारी जीवन के घात–प्रतिघातों से उत्पन्न मानसिक द्वन्द्व के विरेचन के परिणाम स्वरूप शान्ति का आधार थी।'' इसलिए उस युग के नीति सम्बन्धी अन्योक्तिपरक छन्दों में कवियों के वैयक्तिक अनुभवों की छाप दिखाई देती है।

रीतिकालीन काव्य में प्रकृति निरूपण भी मिलता है। ऋतु वर्णन के साथ प्रकृति चित्रण उद्दीपक के रूप में अधिक दिखाई देता है। संयोग और वियोग दोनों ही स्थितियों में प्रकृति को महत्त्व दिया है। इस युग में मुक्तक काव्य अधिक लिखा गया है क्योंकि कवि राजदरबारी वातावरण से घिरा हुआ था। उसे चमत्कार पैदा कर वाह–वाही लूटनी थी इसलिए मुक्तक काव्य शैली उसे अधिक उपयुक्त जान पड़ी। कवित्त, सवैया, दोहा में रचित रीतिकाव्य मुक्तक शैली का श्रेष्ठ उदाहरण है। रीतिकाल में कवियों की रुचि नारी चित्रण में अधिक रही है। इस काल में कवि को नारी का मातृरूप या देवी रूप ध्यान नहीं रहा। इन्होंने नारी का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है।

रीतिकाल की प्रमुख धाराएँ –

रीति कालीन कवियों को स्पष्ट रूप से दो भागों में रखा जा सकता है। रीतिबद्ध और रीति मुक्त। जिन कवियों ने काव्यरीतियों का पालन करते हुए काव्य रचना की वे रीतिबद्ध कवि कहलाए। इनमें चिन्तामणि, मतिराम, राजा जसवन्तसिंह, भूषण, पद्माकर, श्रीपति, सेनापति आदि प्रमुख हैं। रीतिकाल की दूसरी धारा रीतिमुक्त कवियों की है इन कवियों ने रीतिबद्ध कवियों की तरह ना तो लक्षण ग्रन्थ लिखे और ना रीति में बँधकर काव्य रचना की। जहाँ रीतिबद्ध कवियों ने चमत्कार प्रदर्शन के लिए बुद्धि प्रेरित कविता की, वहीं रीतिमुक्त कवियों में भावपक्ष की प्रधानता रही है। घनानन्द ने कहा भी है– 'लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहितो मेरे कवित्त बनावत।' इस धारा के कवियों में घनानन्द, बोधा, ठाकुर और आलम विशेष प्रसिद्ध हैं। विद्वानों ने रीतिकाल में कवियों की एक और धारा का उल्लेख किया है जिसे रीतिसिद्ध धारा कहा। इन कवियों ने लक्ष्य–लक्षण परम्परा का पालन नहीं किया।

किन्तु इनकी कविताओं में रीति परिपाटी की सभी विशेषताएँ मिलती हैं। रीतिसिद्ध कवियों में बिहारी सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। वैसे रीतिसिद्ध धारा को रीति बद्धधारा का ही अंग माना जाना चाहिए।

रीतिबद्ध धारा के प्रमुख कवि –

चिन्तामणि त्रिपाठी (सन् 1609–1685)

चिन्तामणि का जन्म तिकवाँपुर कानपुर जिले के अन्तर्गत माना जाता है। इनके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था। भूषण, मतिराम और जटाशंकर इनके भाई थे। इनका जन्म काल संवत् 1666 के लगभग माना जाता है। ये आचार्य कवि थे। इनका कविता काल संवत् 1700 के आस पास ठहरता है। इन्होंने 'कविकुलकल्पतरु' ग्रन्थ संवत् 1707 में लिखा था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार ''हिन्दी रीतिग्रन्थों की अखण्ड परम्परा चिन्तामणि त्रिपाठी से चली'' । इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं– काव्य विवेक, कविकुलकल्पतरु, काव्यप्रकाश, रस मंजरी, छन्द विचार, पिंगल और रामायण।

ये शाहजी भोंसले, शाहजहाँ और दाराशिकोह के आश्रय में रहे। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कविकुलकल्पतरु' विषेष चर्चित रहा है इन्होंने काव्य का स्वरूप, गुण, अलंकार, दोष, शब्द शक्ति, ध्वनि, रस, नायक–नायिका भेद आदि काव्यांगों का क्रमशः निरूपण किया है। इस ग्रन्थ के निर्माण में चिन्तामणि ने मम्मट, विश्वनाथ, धनंजय, भानुमिश्र आदि के ग्रन्थों से सहायता ली है। काव्य के सभी अंगो के निरूपण का मार्ग सर्वप्रथम हिन्दी में इन्होंने ही चलाया। इनकी ब्रजभाषा विशुद्ध थी। विषय–वर्णन में भी सिद्धहस्त थे। ये एक उत्कृष्ट कवि थे। इनकी रचना का सुन्दर उदाहरण देखिए –

येई उधारत हैं तिन्हैं जे परे मोह–महोदधि के जल फेरे।
जे इनको पल ध्यान धरै मन, ते न परै कबहूँ जम–घेरे।।
राजै रमा–रमनी–उपधान अभै बरदान रहै जन नेरे।
हैं बलभार उदण्ड भरे हरि के भुजदण्ड सहायक मेरे।।

मतिराम (17 वीं शती)

मतिराम को कवि चिन्तामणि और भूषण का भाई माना जाता है। इनका जन्म तिकवाँपुर (कानपुर) में संवत् 1674 के लगभग माना जाता है। इनकी मृत्यु संवत् 1773 के आस–पास हुई। बूँदी नरेश भावसिंह के आश्रय में बहुत समय तक रहे। उनके ही आश्रय में इन्होंने 'ललितललाम' नामक अलंकार ग्रन्थ की रचना की थी। रीतिकाल के कवियों में मतिराम का नाम बहुत आदर के साथ लिया जाता है। मिश्र बन्धुओं ने तो इनको हिन्दी के नवरत्नों में स्थान दिया है। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं– रसराज, ललितललाम, अलंकारपंचाशिका, छन्दसार, साहित्यसार और लक्षणश्रृंगार। बिहारी की तरह ही इन्होंने 'मतिराम सतसई' की रचना की। इनके दोहों की सरसता भी बिहारी के दोहों के समान है। मतिराम की रचनाओं में ना तो शब्दाडम्बर है और ना भावों और भाषा की कृत्रिमता । 'रसराज' और 'ललितललाम' मतिराम के अतिप्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इन्होंने अपनी कविता में राधा और कृष्ण का अलौकिक प्रेम, जग के व्यवहार में किस प्रकार उपयोगी है यह भली प्रकार स्पष्ट किया है। रीति कालीन कवियों में मतिराम की सी चलती भाषा और सरस व्यंजना पद्माकर को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ है। इनके 'रसराज' में श्रृंगार रस का वर्णन है परन्तु प्रधानतः इसमें नायिका भेद का विस्तार है। मतिराम के अनुसार नायिका वह है जिसको देख कर चित्त में भावों की उत्पत्ति हो। इनकी कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है–

कुन्दन को रंग फीको लगै, झलकै अतिअंगनि चारू गोराई।

आँखिन में अलसानि, चितौनि में मंजु बिलासन की सरसाई।।
को बिनु मोल बिकात नहीं 'मतिराम' लहे मुसकानि–मिठाई।
ज्यों–ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यों–त्यों खरी निकरै सी निकाई।।

मतिराम की रचना में भाषा के माधुर्यगुण के अतिरिक्त अर्थ गाम्भीर्य का भी विशेष गुण है। इनकी कविता में आचार्यत्व के साथ–साथ भाव सौन्दर्य और सरसता भी पर्याप्त है।

भूषण (सन् 1613–1715 ई.)

वीररस के प्रसिद्ध कवि भूषण का जन्म कानपुर के समीप तिकवाँपुर नामक स्थान पर संवत् 1670 में हुआ। इनके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था। चित्रकूट के राजा रुद्रसाह सोलंकी ने इनको 'भूषण' उपाधि से सम्मानित किया और इस उपनाम से ये इतने प्रसिद्ध हुए कि इनका वास्तविक नाम किसी को अब तक पता नहीं है। जनश्रुति के अनुसार ये रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि चिन्तामणि, मतिराम और जटाशंकर के भाई माने जाते हैं। इनकी मृत्यु संवत् 1772 में हुई।

ये कई राजाओं के दरबार में रहे किन्तु इनके वीर–काव्य के नायक हिन्दवी साम्राज्य संस्थापक वीरशिरोमणि शिवाजी रहे हैं। ये अनेक राजाओं के आश्रय में रहे किन्तु महाराज छत्रसाल और शिवाजी इनको अतिप्रिय रहे। उस समय औरंगजेब की कट्टरता और हिन्दुओं के प्रति उसके विद्वेष ने विरोध की ज्वाला को प्रचण्ड कर दिया था। मुगल शासन से परित्राण पाना वीरों का ध्येय हो गया था। पंजाब में गुरुगोविन्दसिंह चिड़ियों से बाज लड़ाने का उद्घोष कर रहे थे। बुन्देलखण्ड में वीरछत्रसाल मातृभूमि की मुक्ति हेतु संलग्न थे तो दक्षिण में छत्रपति शिवाजी ने बीजपुर की आदिलशाही और उत्तर में औंरगजेब की नाक में दम कर रखा था। इसलिए वीरता की अग्नि को प्रचण्ड ज्वाला बनाने कविभूषण पहले महाराज छत्रसाल के दरबार में रहे और फिर छत्रपतिशिवाजी के दरबार में रहे। भूषण राजाश्रय में रहे परन्तु विलासी राजाओं का आश्रय नहीं लिया। इसलिए भूषण ने लिखा –

ब्रह्म के आनन ते निकसे ते अत्यन्त पुनीत तिहुँपुर मानी।
राम युधिष्ठिर के बरने बलमीकिहु व्यास के अंग सुहानी।।
भूषण यों कलि के कविराजन, राजन के गुन पाय नसानी।
पुण्य चरित्र शिवा सरजा, सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी।।

इनके 'शिवराजभूषण', 'शिवाबावनी', 'छत्रसालदशक', 'भूषणउल्लास', 'दूषणउल्लास', और 'भूषणहजारा' नामक ग्रन्थ मिलते हैं।

रीतिकाल के कवि होने के कारण कवि भूषण ने अपना 'शिवराज–भूषण' अंलकार ग्रन्थ के रूप में बनाया। वैसे अंलकार निरूपण की दृष्टि से इसे कोई उत्तम ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता है। लक्षणों की भाषा में भी स्पष्टता का अभाव है। उदाहरण भी कहीं–कहीं ठीक नहीं हैं।

इस प्रकार आचार्यकार्य में भूषण इतने सफल नहीं हो पाए जितने ये कविकार्य में प्रसिद्ध हुए। विषय के अनुरूप जिस ओजपूर्ण वाणी की अपेक्षा होती है, वह इनके काव्य में सर्वत्र और

स्पष्ट परिलक्षित होती है। इनकी ओजपूर्ण कविता से पाठक वीररस जनित शक्ति–स्फूर्ति का अनुभव करता है और आनन्द विभोर हो जाता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

इन्द्र जिमि जम्भ पर, बाडव सुअम्भ पर
रावन सदम्भ पर, रघुकुल राज है।
पौन वारिवाह पर, संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्त्रबाहुपर, राम द्विजराज है
दावा द्रुमदण्ड पर, चीता मृग झुण्ड पर
भूषण वितुण्डपर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर
त्यों मलेच्छ बंस पर सेर शिवराज हैं।।

महाराजा जसवन्त सिंह (1626–1678)

जसवन्त सिंह मारवाड़ के प्रसिद्ध प्रतापी राजा थे। इनका जन्म संवत् 1683 में हुआ था। इनके पिता का नाम महाराजा गजसिंह था। इनके बड़े भाई अमरसिंह बड़े उग्र स्वभाव के थे, इस कारण इनके पिता महाराजा गजसिंह ने उन्हें राज्य गद्दी से वंचित कर दिया था। जसवन्त सिंह को राज्य गद्दी प्राप्त हुई। इनका राज्य एक प्रकार से दिल्ली के दरबार के अधीन था। ये बड़े वीर थे। शाहजहाँ के समय में इन्होंने कई युद्धों में भाग लिया और विजय प्राप्त की। औरंगजेब इनसे सदैव भयभीत रहता था। इसलिए इनको सदैव दिल्ली से दूर रखता था। अफगानों को काबू में रखने के लिए इनको काबुल भेजा गया और अन्त में वहीं संवत् 1735 में इनका निधन हुआ।

ये साहित्य मर्मज्ञ, गुणी, उदार और तेजस्वी शासक थे। स्वयं कवि थे और कवियों के आश्रय दाता थे। ये भी हिन्दी साहित्य के प्रधान आचार्य माने जाते हैं। इनके कुछ ग्रन्थ तत्वज्ञान सम्बन्धी हैं। इनकी रचनाएँ हैं – अपरोक्षसिद्धान्त, अनुभवप्रकाश, आनन्द–विलास, सिद्धान्तबोध, सिद्धान्तसार और प्रबोधचन्द्रोदय नाटक। ये हिन्दी साहित्य क्षेत्र में आचार्य के रूप में अधिक प्रसिद्ध हैं कवि के बजाय।

इनका 'भाषा – भूषण' ग्रन्थ एक श्रेष्ठ रचना है। इस ग्रन्थ पर 'चन्द्रालोक' का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। 'भाषा – भूषण' में एक ही दोहे में लक्षण और उदाहरण दोनों रखे गए हैं, जो हिन्दी विद्यार्थियों में अलंकार ज्ञान के लिए वैसे ही प्रसिद्ध हुआ जैसे संस्कृत विद्यार्थियों में 'चन्द्रालोक'। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

अत्युक्ति अलंकार– अलंकार अत्युक्ति यह बरनत अतिसय रूप।
जाचक तेरे दान तें गये कल्पतरु भूप।।

सार अलंकार का उदाहरण–

एक–एक ते सरस जब अलंकार यह सार।
मधु सों मधुरी है सुधा कविता मधुर अपार।।

देव (सन् 1673–1767)

रीतिकाल के रीतिबद्ध श्रृंगारिक कवियों में देवदत्त (देव) का नाम अपना विशिष्ट स्थान रखता है। ये इटावा (उत्तर प्रदेश) के काश्यप गोत्री, कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्म संवत् 1730 में हुआ और इनकी मृत्यु संवत् 1824 मानी जाती है। ये किसी एक आश्रयदाता के साथ अधिक समय टिक नहीं पाए और अनेक आश्रयदाताओं के साथ रहे परिणाम स्वरूप इनका अनुभव बहुत व्यापक रहा। इनके ग्रन्थों की संख्या 72 कही जाती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनके 25 ग्रन्थों का उल्लेख किया है जिसमें प्रमुख हैं भावविलास, अष्टयाम, भवानीविलास, प्रेमतंरग, मुगल–विलास, प्रेमचन्द्रिका, रसानन्दलहरी और रागरत्नाकर आदि। इनके अधिकांश ग्रन्थ काव्यशास्त्र से सम्बद्ध हैं। ये जितने ग्रन्थ हैं पूर्ण स्वतन्त्र नहीं हैं। बहुत सारे पद जो एक ग्रन्थ में पाए जाते हैं वे दूसरे ग्रन्थों में भी देखे जा सकते हैं। 'प्रेमचन्द्रिका' में प्रेम का सामान्य रूप से वर्णन किया है और उसके भेदोपभेदों का वर्णन किया है। राग रत्नाकर राग–रागनियों से सम्बन्धित है, देव हमारे सामने आचार्य और कवि दोनों रूपों में आते हैं। इन्होनें रस, अलंकार, शब्दशक्ति और काव्यांगों का पर्याप्त वर्णन किया है। इनका–सा अर्थ सौष्ठव और नवोन्मेष विरले ही कवियों में मिलता है। शब्द शक्तियों के बारे में देव का कथन है–

अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणा लीन।
अधम व्यंजना रस निरस उलटो कहत नवीन।।

देव का भाषा पर विशेष अधिकार था। देव की भाषा तो मतिराम से भी श्रेष्ठ मानी जाती है। इनकी भाषा में अनुप्रासों की अच्छी छटा दिखाई देती है। जहाँ इनकी भाषा सुव्यवस्थित और स्वच्छ है, वहीं इनकी कविता भी अत्यन्त सरस है –

सांसन ही में समीर गयो अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि।
तेज गयो गुन लै अपनो अरु भूमि गई तनु की तनुता करि।।
'देव' जियै मिलिबेई की आस कै, असहु पास अकास रह्यो भरि।
जा दिन ते मुख हेरि हरै हँसि हेरि हियो जु लियो हरि जू हरि।।

देव ने शुद्ध प्रेम का बड़ा उत्तम वर्णन किया है। इनका दिया प्रेम का लक्षण कितना सुन्दर है –

सुख–दुख में है एक सम, तन–मन–वचन प्रतीत।
सहज बढै हित चित्त रहै, जहाँ सप्रेम सप्रीत।।
इनकी कविता की सुन्दरता का एक और उदाहरण द्रष्टव्य है –
ऐसो हौं जु जानतो कि जैहै तू विषै के संग,
एरे मन मेरे हाथ पाँव तेरे तोर तो।
आजु लगि हौं कत नरनाहन की नहीं सुनी,
नेह सौं निहार हेरि बदन निहोरतो।।
चलन न देतों 'देव' चन्चल अचल करि,
चाबुक चितावनीनि मारि मुँह मोरतो।

भारो प्रेम पाथर, नगारो दै, गरै सौं बाँधि,
राधा–वर–विरद के वारिध में बोरतो।।

भिखारीदास (कविता काल सन् 1725 से 1760)

भिखारीदास जाति से कायस्थ थे और प्रतापगढ़ (अवध) के पास ट्योंगा नामक ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम कृपालदास था। ये प्रतापगढ़ के राजा पृथ्वीसिंह के भाई हिन्दूपतिसिंह के आश्रय में रहे। इनके द्वारा प्रणीत 7 ग्रंथ उपलब्ध हैं। 'रससारांश', 'काव्यनिर्णय', 'शृंगारनिर्णय', 'छन्दोर्णवपिंगल', शब्दनामप्रकाश, विष्णुपुराणभाषा और शतरंजशतिका। प्रथम तीन ग्रन्थ काव्यशास्त्रीय हैं, चौथा छन्दशास्त्र से सम्बन्धित है। भागीरथमिश्र के अनुसार भिखारीदास रीति कालीन अन्तिम वर्ग के सबसे बड़े आचार्य थे। यद्यपि काव्य निर्णय में उसकी सामग्री पूर्ववर्ती कवियों, आचार्य केशव, चिन्तामणि, श्रीपति आदि से ली है। तथापि उसमें भिखारीदास की विद्वता ही टपकती है। कवि की दृष्टि से भी भिखारी दास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने शृंगार सम्बन्धी कविताएँ लिखी हैं। इनकी कविता का उदाहरण देखिए –

अँखियाँ हमारी दईमारी सुधि–बुधि हारीं,
मोहू तें जु न्यारी दास रहैं सब काल में।
कौन गहै ज्ञानै काहि सौंपत सयाने, कौन,
लोक–ओक जानै, ये नहीं हैं निज हाल में।।
प्रेम पगि रहीं महामोह मैं उमगि रहीं,
ठीक ठगि रहीं लगि रहीं बनमाल में।
लाज को अँचै कै, कुलधरम पचै कै वृथा,
बंधन सँचै कै, भई मगन गोपाल में।।

इनकी भाषा परिमार्जित है। शब्दों का चयन भी विषयानुकूल किया है। इनकी व्यंजना पद्धति सरस और व्यंग्य प्रधान है। इनकी ब्रजभाषा में संस्कृत के अतिरिक्त उर्दू और फारसी के शब्द भी आ गए हैं। ब्रजभाषा के सम्बन्ध में दास कहते हैं–

ब्रजभाषा भाषा रुचिर, कहै सुमति सब कोय।
मिलै संस्कृति पारस्यो पै अति प्रकट जु होय।।
ब्रज मागधी मिलै भ्रमर, नाग यमन भाखानि।
सहज पारसी हू मिलै, षट् विधि कवित बखानि।।

पद्माकरभट्ट (1753–1833)

पद्माकरभट्ट का जन्म बाँदा में संवत् 1810 में हुआ। इनके पिता का नाम श्री मोहनलाल था। ये तैलंग ब्राह्मण थे। पद्माकर को रीतिकाल के उत्तरार्द्ध का अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है। इनको बिहारी की तुलना का कवि माना जाता है। ये अनेक राजाओं के दरबारों की शोभा बढ़ाते रहे। कई राजदरबारों में इनका बड़ा मान था। ये अनूपगिरि (हिम्मतबहादुर) जो बाँदा के नवाब के बड़े अधिकारी थे, के यहाँ रहे और 'हिम्मत बहादुर विरदावली' ग्रन्थ लिखा। ये जयपुर के महाराज जगतसिंह के यहाँ भी रहे हैं और अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'जगविनोद' लिखा। 'जगविनोद'

के अतिरिक्त इनके ग्रन्थ हैं पद्माभरण, जयसिंहविरूदावली, हितोपदेश, रामरसायन, प्रबोधपचासा और गंगालहरी। संवत् 1890 में कानपुर में गंगातट पर इनका देवलोक गमन हुआ।

शुक्ल जी के अनुसार ''लाक्षणिक शब्दों के प्रयोग द्वारा ये कहीं – कहीं मन की अव्यक्त भावना को ऐसा मूर्तिमान कर देते हैं कि सुनने वाले का हृदय आप ही आप हामी भरता है।'' लाक्षणिकता इनकी बड़ी विशेषता है।

यद्यपि इन्होंने वीर रस की कविता भी लिखी तथापि श्रृंगाररस की कविता ही इनकी विशेष प्रसिद्धि का कारण है।

फागु की भीर, अभीरिन में गहि गोविन्द लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की पद्माकर, ऊपर नाई अबीर की झोरी।।
छीनि पितंबर कम्मर तें सु विदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाय कही मुसुकाय, लला फिर आइयो खेलन होरी।।

पद्माकर का 'जगविनोद' कवित्व के गुणों से ओत–प्रोत ग्रंथ है। इनकी प्रसिद्धि का आधार भी यही ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में श्रृंगार रस का बड़ा विस्तृत वर्णन किया है। श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सरस वर्णन है। ये एक उत्कृष्ट कवि थे। शब्द चयन के कुशल शिल्पी थे। इनकी कविता में अनुप्रास की छटा भी दर्शनीय है।

आई संग आलिन के ननद पठाई नीठि,
सोहत सोहाई सीस ईडरी सुपट की।
कहै पद्माकर गँभीर जमुना के तीर,
लागी घट भरन नवेली नेह अटकी।
ताही समय मोहन जो बाँसुरी, बजाई, तामें
मधुर मलार गाई ओर बंसीवट की,
तान लागे लटकी, रहीं न सुधि घूँघट की,
घर की न घाट की, न बाट की न घट की।।

कवि गंग (1538 से 1617 ई०)

गंग अकबर के दरबारी कवि थे। इनका समय 16 वीं शती रहा होगा। आचार्य शुक्ल ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में इनकी गणना भक्ति काल के कवियों में की है परन्तु इनकी रचना पद्धति रीति काल की सी है इसलिए ये रीति काल के ही कवि ठहरते हैं। अकबर के दरबारी कवि रहीम इनके परम मित्र थे। इनका कोई ग्रन्थ तो नहीं मिलता परन्तु समकालीन और परवर्ती कवियों में इनका नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। कहा भी गया है– 'तुलसी गंग दुऔ भए सुकविन के सरदार।'

ये सरल सुहृदय कवि थे। वीर रस और श्रृंगार के बहुत मनभावन कवित्त इन्होंने कहे हैं। कहीं–कहीं बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण विरहताप का वर्णन भी इनकी कविताओं में मिलता है। उदाहरण स्वरूप यह पद –

बैठी थी सखिन संग, पिय को गवन सुन्यो,

सुख के समूह मे वियोग आगि भरकी।
गंग कहै त्रिविध सुगंध लै पवन बह्यो,
लगत ही ताके तन भई बिथा जर की।।
प्यारी को परसि पौन गयो मानसर कहँ,
लगत ही औरे गति भई मानसर की।
जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयो,
तल जरि गयो, पंक सूख्यो भूमि दर की।।

इनकी वीर रस की कविता का एक पद द्रष्टव्य है –

झुकत कृपान मयदान ज्यों उदोत भानु,
एकन ते एक मानौं सुषमा जरद की।
कहै कवि गंग तेरे बल की बयारि लगे,
फूटी गजघटा घन घटा ज्यों सरद की।
एते मान सोनित की नदियाँ उमड़ि चलीं,
रही न निसानी कहूँ महि में गरद भी।
गौरी गह्यो गिरिपति गनपति गह्यो,
गौरीपति गहि पूछ लपकि बरद की।।

ऐसी किंवदन्ती है कि ये अकबर के दरबारी कवि होते हुए भी कभी बादशाह की प्रशंसा नहीं करते थे। इनसे ईर्ष्या रखने वाले दरबारियों ने एक बार एक ऐसी काव्य पंक्ति (समस्यापूर्ति) रखी जिससे अन्त में आता था। 'आस करैं सब अकबर की' भरे दरबार में कवि गंग को इस समस्यापूर्ति पर कवित्त बनाने को कहा। गंग ने कवित्त बनाया –

अनेक गुनिया दुनियाँ को ठगें, सिर बाँधत पोट अटब्बरकी।
चपलूसी सुहाति करै, जिन्है लाज नहीं कुलढ़ब्बरकी।
गंग के एक अधार प्रभु, वो तो बात न मानत जब्बर की।
जिनको हरि की कछु आस नहीं, सो करौ मिलि आस अकब्बर की।।

अकबर के बाद ये जहाँगीर के आश्रय में भी रहे। उन दिनों शासन नूरजहाँ के हाथ में था। नूरजहाँ इनसे नाराज हो गई और इनको हाथी से मरवाने का आदेश दे दिया। इस अवसर पर कवि गंग ने यह दोहा पढ़ा –

कबहुँ न भँडुआ रन चढै, कबहुँ न बाजी बंब।
सकल सभाहि प्रनाम करि, बिदा होत कवि गंग।।

गंग कवि ने झुकना स्वीकार नहीं किया और मरना स्वीकार किया। जब कवि को मैदान में हाथी से मरवाया जाना था तब उससे पूछा कवि कैसा लग रहा है तो कवि ने उत्तर दिया –

सब देवन को दरबार जुर्यौ तहँ पिंगल छन्द बनाय कै गायो।
जब काहु ते अर्थ कह्यौ न गयो, तब नारद एक प्रसंग चलायो।
मृतलोक में है नर एक गुनी, कवि गंग को नाम सभा में बतायो।

सुनि चाह भई परमेसर को तब गंग को लेन गनेस पठायो।

कवि ने प्राण लेने को तत्पर हाथी को परमात्मा द्वारा भेजे गए गणेश से उपमित कर अपने स्वाभिमानी होने और मृत्यु से भी निडर होने का परिचय दिया।

रीतिसिद्ध धारा के प्रसिद्ध कवि बिहारी (सन् 1595–1663)

बिहारी रीतिकाल के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि माने जाते हैं। रीतिकाल के अन्तर्गत बिहारी ही एक मात्र ऐसे कवि हैं जिनको रीतिसिद्ध कवि माना जाता है क्योंकि उन्होंने किसी प्रकार के लक्षण ग्रन्थ नहीं लिखे परन्तु फिर भी इनके 'सतसई' नामक सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ में रीति परिपाटी की सभी विशेषताएँ उपलब्ध हैं।

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के अनुसार "बिहारी ने आचार्य कर्म से दूर रहकर जो सतसई रची उसमें रीतियाँ स्वतः सिद्ध होती चली गई हैं, इसलिए ये रीति सिद्ध कवि हैं।" इनका जन्म ग्वालियर राज्य के बसुवा गोविन्दपुर में संवत् 1652 के लगभग हुआ बताते हैं और मृत्यु संवत् 1720 के आस–पास हुई बताते हैं। इनका बचपन बुन्देलखण्ड में बीता, युवावस्था में ये अपने ससुराल मथुरा आए थे। इस सम्बन्ध में एक दोहा प्रसिद्ध है –

जन्म ग्वालियर जानिये, खण्ड बुन्देले बाल।
तरुनाई आई सुखद, मथुरा बसि ससुराल।।

बाद में इनका समय जयपुर के महाराज जयसिंह के आश्रय में बीता। कहते हैं, ये जब जयपुर पहुँचे तो महाराज अपनी नई रानी के प्रेम में इतने डूबे हुए थे कि महल से बाहर कहीं नहीं निकलते थे और राजकाज पर ध्यान ही नहीं देते थे। प्रमुख सभासदों के आग्रह पर उन्होंने एक दोहा लिखकर महल में भेजा –

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सो बँध्यो, आगे कौन हवाल।।

कहते हैं दोहे को पढ़ कर महाराज इतने प्रभावित हुए कि ये महाराज के प्रिय बन गए। हर दोहे पर इनको एक स्वर्णमुद्रा पुरस्कार में मिलती थी। ये बड़े स्वतन्त्र प्रकृति के कवि थे। महाराज के आश्रय में थे परन्तु जयसिंह मुगलों के अधीन थे। ये मुगलों की ओर से हिन्दू राजाओं के विरुद्ध लड़ते थे, तो अपने आश्रयदाता को लिखा –

स्वारथ सुकृत न श्रमवृथा देखि विहंग विचारि।
बाज पराये पानि पर, तू पच्छीनु न मारि।।

बिहारी ने कोई लक्षण ग्रन्थ नहीं लिखा तथापि श्रृंगार सम्बन्धी जितने विभाव–अनुभाव, संचारी भाव आदि हैं सतसई में उन सभी के उदाहरण उपस्थित हैं। ये बड़े ही सूक्ष्म निरीक्षण प्रतिभा के कवि थे। एक ही दोहे में कैसा चित्र खींचते थे, उदाहरण देखिए –

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै, भौहनि हँसै, दैन कहै नटि जाइ।।

श्रृंगार के संचारी भाव व्यंजना का एक और मर्मस्पर्शी उदाहरण इस दोहे में है –

सघन कुंज, छाया सुखद, सीतल मन्द समीर।

मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर।।

बिहारी श्रृंगार के कवि है। गागर में सागर भरना इनकी विशेषता है। हृदय स्थित नायिका की शान्ति भंग होने की आशंका से नायिका मान सम्बन्धी सीख सुनना नहीं चाहती, वह शब्दों से नहीं नेत्रों के संकेतों से काम लेती है।

सखी सिखावति मान विधि, सैननि बरजति बाल।
हरुए कहि मो हिए बसत, सदा बिहारी लाल।।

इनके नीति सम्बन्धी दोहे भी बहुत प्रसिद्ध हैं –

नर की अरु नल नीर की, गति एकै करि जोइ।
जेतो नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊँचौ होइ।।
कोटि जतन कोऊ करै, परै न प्रकृति हिं बीच।
नल बल जल ऊँचौ चढ़ै, अन्त नीच कौ नीच।।

इनके काव्य में अलंकार योजना भी बड़ी अद्भुत है। एक ही दोहे में कई अलंकारों का प्रयोग हुआ है। 'असंगति और विरोधाभास' की ये प्रसिद्ध उक्तियाँ देखने योग्य हैं –

दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर–चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हिए, दई नई यह रीति।।
तंत्रीनाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़ेतिरे, जे बूड़े सब अंग।।

रीतिमुक्त काव्यधारा –

वे कवि जो रीति का सम्पादन करने में अपनी कवित्व शक्ति का चमत्कार दिखा रहे थे रीतिसिद्ध कहलाए। दूसरे वे जो रीति के बन्धन से मुक्त थे। रीतिमुक्त या स्वच्छन्द धारा के कवि कहलाए। रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि रीतिशास्त्र की बँधी–बँधाई शास्त्रीय परंपरा का अनुगमन न करके, अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति को सर्वोपरि मानते हुए उन्मुक्त प्रेम के गीत गाते थे। दोनों प्रकार के काव्यों में श्रृंगार और प्रेम की प्रधानता है और विषय–वस्तु की दृष्टि से इन दोनों में कोई अन्तर नहीं था किंतु भावों के प्रकार; गहराई तथा अभिव्यक्ति में बहुत पृथकता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती थी। रीतिमुक्त काव्यों ने रीतिबद्ध कवियों की भाँति लक्षण ग्रंथों की रचना नहीं की, वरन् रीति का बन्धन ढीला करके चले हैं। रीतिमुक्त प्रेमकाव्य की रचना करने वालों में रसखान, घनानन्द, आलम, बोधा, ठाकुर आदि कवि प्रमुख माने जाते हैं।

रीतिमुक्त काव्यधारा की विशेषताएँ –

1. श्रृंगार का उदात्त चित्रण – इस काल में चित्रित प्रेम विलास एवं काम मूलक न होकर उदात्त रूप में चित्रित हुआ है। इसमें भाव गाम्भीर्य एवं वियोग पक्ष का प्राधान्य है। प्रेम का वर्णन भी दूती या सखियों के माध्यम से न होकर आत्मा की पुकार एवं प्रेम की आन्तरिक भावना के रूप में हुआ है। इसमें चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति का अभाव है और तीव्र एकान्तिक प्रेम–भाव का निरूपण है। इसमें वासनोन्मुखता का अभाव है।

2. प्रेम की पीर – उन्मुक्त कवियों ने विरहानुभूति का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है और वियोगान्तर्गत प्रेमी–हृदय की अन्तर्दशाओं का व्यंग्योक्तियों और उपालम्भों द्वारा मार्मिक वर्णन किया है। इनकी प्रेम की पीर सूफी–प्रेम की पीर से प्रभावित है।

3. प्रेम का एकान्तिक चित्रण – रीतिमुक्त काव्य में हमें प्रेम का एकतरफा चित्रण फारसी की शैली पर मिलता है। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रेम की पीर फारसी काव्यधारा की वेदना की प्रवृत्ति के साथ सूफी–कवियों से ग्रहण की है।

4. भावप्रधान संयोग वर्णन – रीतिमुक्त काव्य में संयोग पक्ष का भी मार्मिक वर्णन है। वहाँ भी वर्णन की मुद्राओं और हाव–भावों के हृदय पर पड़े प्रभाव का ही निरूपण अधिक हुआ है।

5. श्रीकृष्णलीला का प्रभाव – रीतिमुक्त काव्य में श्रीकृष्ण की लीलाओं का व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। रीतिमुक्त कवियों ने श्रीकृष्ण की अलौकिक आलम्बन के सहारे अपने उन्मुक्त प्रेम की भावधारा को प्रवाहित किया है।

5. मुक्तक शैली – रीतिमुक्त काव्य की रचना कवित्त और सवैया छन्दों के माध्यम से मुक्तक शैली में हुई है।

7. अलंकरण का प्राधान्य – रीतिमुक्त काव्य में अलंकार की प्रवृत्ति पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए न होकर सूक्ष्म अन्तर्वृत्तियों का परिचय देने एवं प्रेम की विषमता का निरूपण करने के लिए दिखाई पड़ती है। रीतिमुक्त काव्य में मुहावरे और लोकोक्तियों के विधान से स्वाभाविकता आ गई है –

तुम कोन सौ पाटी पढ़ै हौ लला, मन लेहु पै देहु छटांक नहीं।

8. ब्रजभाषा का प्रयोग – इन कवियों ने ब्रजभाषा में विशुद्धा एवं प्रौढ़ता के साथ माधुर्य का और कहीं–कहीं फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया है।

रीतिमुक्त कवियों की प्रेम व्यंजना –

रीतिमुक्त कवियों की प्रेम–व्यंजना का रूप रीतिबद्ध कवियों से भिन्न था। इनकी प्रेम व्यंजना की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

1.परंपरागत नायिका भेद प्रणाली का परित्याग – रीतिमुक्त कवियों ने प्रिय के प्रति एकान्तनिष्ठा प्रदर्शित की है और अनुभवनिष्ठ प्रेम को महत्ता प्रदान करके रीतिबद्ध कवियों के द्वारा स्वीकृत परंपरागत नैतिक मूल्यों को स्वीकार नहीं किया है।

2. अशरीरी मानसिक प्रेम – रीतिमुक्त कवियों का प्रेम रीतिबद्ध कवियों की भाँति शरीरी न होकर मानसिक है। साथ ही इनके प्रेम में वैयक्तिकता का विशेष प्रभाव दिखाई पड़ता है।

3. स्वच्छन्द नायक–नायिका – रीतिमुक्त कवियों ने स्वच्छन्द प्रेम के रीति–रहित–प्रेम के गीत गाए हैं –

लोक की लाज और सोच प्रलोक को वारिये प्रीति के ऊपर दोऊ।
गाँव की, गेह को, देह को नातो सनेह में हां तो करै पुनि सोऊ।।

4. एकान्तिक प्रेम की साधना – यह मार्ग स्वच्छन्द होने के साथ ही लौकिक मर्यादाओं की अवहेलना करने के कारण विषम भी है। इसमें समाज–पक्ष एवं परंपरा दोनों की अवहेलना हुई है –

चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै आनन्द घन।
प्रीति रीति विषम सु रोम–रोम रमी है।।

5. **वियोग का प्राधान्य** – उन्मुक्त प्रेम की तीव्रता–विरह की पीड़ा एवं निराशा के व्याकुल स्वर से तीव्रतर होती गई है। फारसी कवियों की प्रेम की पीर का प्रभाव इन पर स्पष्ट दिखाई पड़ता है –

हम कौन सौं पीर कहैं अपनी,
दिलदार तो काऊ दिखात नहीं। (बोधा)
सुनो जग हेरों रे अंमोही। काहि काहि टेरों,
आनन्द के घन ऐसौ कौन लेखै लेखिए। (घनानन्द)

इन कवियों ने रूप–यौवन के साथ मानसिक दशाओं के भावपूर्ण वर्णन से वियोग की मर्मस्पर्शिता को बढ़ाने का प्रयास किया है।

रीतिमुक्त धारा के प्रमुख कवि घनानन्द (1689–1739 ई.)

इनका जन्म संवत् 1746 के लगभग उत्तर प्रदेश के बुलन्द शहर में हुआ और इनका निधन संवत् 1796 में हुआ। घनानन्द को रीतिमुक्त धारा का कवि माना जाता है। ये जाति के कायस्थ थे। दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह के मीर मंत्री थे। कुछ अन्य मन्त्री सामन्त इनसे ईर्ष्या करते थे। एक बार जब दरबार लगा था तो उन ईर्ष्यालुओं ने बादशाह को कहा कि मीर मन्त्री जी बहुत अच्छा गाते हैं। बादशाह ने आग्रह किया तो ये टालमटोल करने लगे। लोगों ने कहा इनका सुजान से प्रेम है। यदि उसे दरबार में बुलाकर गाने का आग्रह कराएँगे तो इनको गाना ही पड़ेगा। सुजान को दरबार में बुलाया गया । घनानन्द ने सुजान की ओर मुँह करके और बादशाह की ओर पीठ करके ऐसा गाया कि सब तन्मय हो गये। इनका गायन सुनकर सब दंग रह गए। इनके गाने से तो बादशाह प्रसन्न हुआ परन्तु इनकी बेअदबी से नाराज हो इनको शहर से निकालने का हुकम दे दिया। जब ये शहर छोड़कर जाने लगे तो इन्होंने सुजान से भी साथ चलने को कहा। सुजान ने मना कर दिया तो कहते हैं, इन्हें वैराग्य हो गया और ये वृन्दावन जाकर निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए, परन्तु सुजान की छवि इनको जीवन भर आती रही।

घनानन्द मुख्यतः शृंगार के कवि है। वियोग शृंगार में इनकी वृत्ति अधिक रमी है। ये प्रेम की पीर के कवि है। इनका प्रेम अन्तर्मुखी है। इनकी शृंगार की कविताओं में हृदय की सूक्ष्म भावनाओं का बड़ा हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है। उदाहरण स्वरूप यह सवैया है –

अति सूधो सनेह को मारग है, जहँ नैकु सयानप बाँक नहीं।
तहँ साँच चलै तजि अपनापौ, झिझकै कपटी जो निसाँक नहीं।।
धनआनन्द प्यारे सुजान सुनौ, इत एकते दूसरो आँक नहीं।
तुम कौनसी पाटी पढ़े हौ लला, मन लेहुँ पै देहु छटाँक नहीं।।

घनानन्द के प्रमुख ग्रन्थ हैं– सुजानसागर, विहरलीला, कोकसार, रसकेलिबल्ली, इश्कलता, ब्रजविलास, कृपाकन्द और गोकुलगीता। शुक्ल के अनुसार "प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जवाँदानी का ऐसा दावा करने वाला ब्रज भाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।"

जब नादिरशाह का आक्रमण हुआ तो इनके सैनिक मथुरा तक आ पहुँचे और किसी से कह दिया वृन्दावन में बादशाह के मीर मंत्री रहते हैं इनके पास माल होगा। सिपाही आकर इनसे 'जर–जर' (धन–धन) कहने लगे। घनानन्द ने जर को उल्टा करके 'रज–रज' कहकर तीन मुठ्ठी वृन्दावन की धूल उन पर फैंक दी। सैनिकों ने इनका हाथ काट डाला, कहते हैं इन्होंने मरते समय यह कविता रक्त से लिखी –

बहुत दिनान की अवधि आस पास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान को।
कहि कहि आवन छबिले मन भावन को,
गहि गहि राखति ही दै दै सनमान को।
झूठि बतियानि पत्यानि तें उदास ह्वै कै,
अब आ घिरत घन आनँद निदान को।
अधर लगे हैं आनि करि कै पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदेशो लै सुजान को।।

स्वच्छन्द प्रवृत्ति का कवि अन्तर्मुखी होता है। उसकी अनुभूति इन्द्रियानुभूति नहीं हृदयानुभूति होती है, इसलिए उसके काव्य में भावावेग का तीव्र प्रवाह बहता है। घनानन्द की कविता जीवन्त उदाहरण है। इनकी कविता में सांकेतिकता और कहीं कहीं रहस्यात्मकता भी मिलती है। उदाहरण स्वरूप यह सवैया द्रष्टव्य है –

मन जैसे कछु तुम्हें चाहत है, सो बखानियै कैसे सुजान ही हौं।
इन प्राननि एक सदा गति रावरे, बावरे लौं लगिये नित लौं।
बुधि औ सुधि नैननि बैननि में, करि बास निरन्तर अन्तर गौ।
उघरो जग छाय रहे घन आनन्द, चातक लौं तकियै अब तौं।।

यहाँ प्रेम का विषय सांसारिक प्राणी और परमात्मा दोनों ही हो सकते हैं। इनके प्रेम का आधार सुजान अवश्य थी परन्तु इनके प्रेम की परिणति (सु+ज्ञान) परमेश्वर में हुई।

गुरु गोविन्दसिंह (1666–1708 ई.)

सिख पंथ के दसवें गुरु गोविन्दसिंह का जन्म संवत् 1723 में पटना (बिहार) में हुआ और परलोक गमन संवत् 1765 में हुआ। इनके पिता का नाम गुरु तेगबहादुर और माता का नाम गुजरीबाई था। ये योद्धा, संत, कवि और प्रशासक थे। इनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। इन्होंने हिन्दुओं की रक्षा के लिए खालसा पंथ की स्थापना की। ये साहित्य के बड़े प्रेमी थे। यद्यपि सिख सम्प्रदाय में निर्गुण भक्ति का प्राधान्य रहा है परन्तु गुरु गोविन्दसिंह जी ने 'चण्डी–चरित' आदि ग्रन्थों में सगुणोपासना की है। 'चण्डी चरित' बड़ा औज पूर्ण शैली का ग्रन्थ है। गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं में वीररस की प्रधानता है। यद्यपि ये पंजाबी थे तथापि इन्होंने अपनी रचनाओं में साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। इन्होने पंजाबी और फारसी में भी रचना की है। इनकी 'चौबीसअवतार' नामक रचना में श्रृंगार रस भी पर्याप्त दिखाई देता है। इनके अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं

'सुमतिप्रकाश', 'सर्वलोहप्रकाश', प्रेमसुमार्ग और 'बुद्धिसागर'। इनकी भक्ति–नीतिपरक रचना का उदाहरण देखिए –

धन्य जियौ तेहि को जग में मुखते हरि चित्त जु शुद्ध विचारैं।
देह अनित्त न नित्त रहै जस नाव चढ़ें भव सागर तारै।।
धीरज धाम बनाय रहै तन बुद्धि सुदीपक ज्यों उजियारै।
ज्ञानहिं की बढ़नी मनो हाथ ले कातरता कत बार बुहारैं।।

परमात्मा की प्राप्ति के लिए दिखावा नहीं मन की शुद्धि और हृदय में प्रेम चाहिए। ढोंगी साधुओं को इनकी फटकार देखिए –

ध्यान लगाय ठग्यो सब लोगन सीस जटा नख हाथ बढ़ाये।
लाय भभूत मल्यौ मुख ऊपर देव अदैव सबै डहकाये।।
लोभ के लागे फिर्‌यो घर ही घर जोग के न्यास सबै बिसराये।
लाज गई कछु काज कर्‌यो नहीं, प्रेम बिना प्रभु ध्यान न आये।।

ठाकुर बुन्देलखण्डी (1766 से 1823 ई०)

हिन्दी साहित्य में ठाकुर नाम के 3 कवि हुए है। स्वच्छन्द प्रेम धारा के ये कवि 'ठाकुर' जाति के कायस्थ थे। इनका पूरा नाम लाला ठाकुरदास था। इनके पूर्वज लखनऊ के पास के रहने वाले थे। इनके पूर्वज ओरछा (बुन्देलखण्ड) आकर बस गए थे। इनका जन्म संवत् 1823 में ओरछा में हुआ। ये जैतपुर के राजा केसरीसिंह के दरबार में रहने लगे। जोधपुर और बिजावर के दरबार में भी इनका बड़ा नाम था। जैतपुर के राजा केसरी सिंह के बाद इनके पुत्र राजा परीछत के दरबार में इनको बहुत सम्मान मिला। पद्‌माकर के आश्रयदाता हिम्मत बहादुर के दरबार में भी इनका बड़ा आदर था। इनका परलोक गमन संवत् 1880 के लगभग हुआ।

इनकी एक रचना 'ठाकुरठसक' नाम से लाला भगवान दीन ने प्रकाशित करवाई थी। घनानन्द की तरह ठाकुर ने भी काव्यगत मान्यताएँ स्थापित कीं। इनको परम्परागत परिपाटियों पर कविता करना स्वीकार नहीं था। आचार्य शुक्ल लिखते हैं –''ठाकुर बहुत ही सच्ची उमंग के कवि थे। इनमें कृत्रिमता का लेश मात्र भी नहीं था। ना बाह्‌याडम्बर था ना कल्पना की झूठी उड़ान।'' इन्होंने काव्य को आत्मानुभूति प्रेरित माना है। ये रीतिबद्‌ध कवियों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं –

सीखि लीन्हौ मीन मृग खंजन कमल नैन
सीखि लीन्हौ यश औ प्रताप को कहानो है।
सीखि लीन्हौ कल्पवृक्ष कामधेनु चिन्तामनि
सीखि लीन्हौ मेरू औ कुबेर गिरि आनो है।
ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात,
याको नहिं भूलि कहूँ बाँधियत बानो है।
ढेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कबित्त कीबो खेल करि जानो है।

कहते हैं हिम्मत बहादुर के दरबार में एक बार हिम्मत बहादुर इन पर नाराज हो गए और इन पर झल्लाने लगे। ये बहुत ही निर्भीक कवि थे। इनने कवित्त पढा –

वेई नर निर्णय निदान में सराहे जात,
सुखन अघात प्याला प्रेम को पिए रहैं।
हरि रस चंदन चढ़ाय अंग अंगन में,
नीति को तिलक, बेंदी जस की दिए रहैं।
ठाकुर कहत मंजु कंज ते मृदुल मन,
मोहनी स्वरूप धारे, हिम्मत हिए रहै।
भेंट भये समये असमये, अचाहे चाहे,
और लौं निबाहै आँखौं एक सी किए रहै।।

इस पर हिम्मत बहादुर ने जब और कटु वचन कहे तो कवि ठाकुर ने म्यान से तलवार निकाल ली और यह कवित्त कहा –

सेवक सिपाही हम उन राजपूतन के,
दान जुद्ध जुरिबे में नेकु जे न मुरके।
नीति देनवारे हैं मही के महिपालन को,
हिये के बिसुद्ध हैं, सनेही साँचे उर के ।।
ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के,
जालिम दमाद हैं अदानियाँ ससुर के।
चोजिन के चोजी महा, मौजिन के महाराज,
हम कविराज हैं, पै चाकर चतुर के।।

ठाकुर मूलतः प्रेम निरूपक कवि हैं। ये रीति की लीक पर नहीं चले। स्वच्छन्द पद लिखे। इन्होंने प्रेम का सफल निरूपण किया है। उदाहरण देखें –

पवस तें परदेश तें आय मिले पिय औ मन भाई भई है।
दादुर मोर पपीहरा बोलत, तापर आनि घटा उनई है।।
ठाकुर वा सुखकारी सुहावनि दामिनि कौंधि कितैं को गई है।
री अब तो घन घोर घटा गरजौ बरसौ तुम्हैं धूर दई हैं।।

गिरधर कविराय –

इनका जन्म संवत् 1770 में माना जाता है। ये बहुत लोकप्रिय कवि थे। इनकी नीति सम्बघी कुण्डलियाँ बहुत प्रसिद्ध है। गिरधर को मध्यकाल के सद्गृहस्थों का सलाहकार कहा जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, तुलसीदास, गिरधर कविराय और घाघ को जनता का सलाहकार कवि मानते हैं। तुलसीदास धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में, गिरधर कविराय लोक व्यवहार और नीति के क्षेत्र में तथा घाघ खेतीबाड़ी के क्षेत्र में उत्तम नीति निर्देशक कवि हैं। गिरधर कविराय को संसार का व्यापक अनुभव था। इनकी कुण्डलियों में काव्य की मात्रा कम और तथ्य कथन की

प्रवृत्ति अधिक थी। इनकी भाषा सरल और बोध गम्य है। कहीं कहीं खड़ी बोली का प्रयोग भी किया है।

दान की महिमा और परमार्थ के लिए जीवन तक अर्पण की शिक्षा हेतु यह पद विचारणीय है –

पानी बाढ़ो नाव में घर में बाढ़ो दाम।
दोनो हाथ उलीचिये यही सयानों काम।।
यही सयानों काम राम को सुमिरन कीजै।
पर स्वारथ के काज सीस आगे धर दीजै।।
कहि गिरधर कविराय बडेन की याही बानी।
चलिये चाल सुचाल राखिए अपनो पानी।।

इन्होंने न तो अनुप्रास आदि अलंकारों से भाषा को सजाया हैं और न उपमा–उत्प्रेक्षा से चमत्कार पैदा करने का प्रयास किया है। इनकी सर्वप्रियता का कारण सीधी भाषा में तथ्य कथन है।

उदाहरण देखिए –

रहिये लटपट काटि दिन बरू घामहि में सोय।
छाँह न बाकी बैठिये जो तरू पतरो होय।।
जो तरू पतरो होय एक दिन धोखा दै है।
जा दिन बहै बयारि टूटि जब जर से जैहैं।।
कह गिरधर कविराय छाँह मोटे की गहिए।
पाता सब झरि जाय तऊ छाया में रहिए।।

बनवारी –

इनके जन्म और परिवार के विषय में ज्ञात नहीं है। इनके आश्रयदाता महाराजा जसवन्त सिंह (जिनका उल्लेख रीतिबद्ध कवि के रूप में पूर्व में हो चुका है) के बड़े भाई अमरसिंह राठौड़ थे। वे स्वभाव से बड़े उग्र थे। अमरसिंह की उग्रता के कारण ही पिता ने इनको राज्य से निकाल दिया था और जसवन्त सिंह को राज्य गद्दी सौंप दी थी। अमरसिंह शाहजहाँ के यहाँ मनसबदार हो गए थे। अमरसिंह बड़े वीर थे। सलावत खान ने अमरसिंह को भरे दरबार में गँवार कह दिया। अमर सिंह ने तुरन्त तलवार निकाल कर भरे दरबार में सलावत खाँ का सिर धड़ से अलग कर दिया और दरबार से निकल गए। जब उनको पकड़ने का प्रयत्न किया गया तो वे अपने घोड़े पर बैठकर आगरे के किले की ऊँची प्राचीर से घोड़े सहित नीचे कूद गए। उनका घोड़ा मर गया और अमरसिंह बच कर निकल गए। आज भी आगरे के लाल किले के नीचे जहाँ घोड़ा कूदा था वहाँ एक छोटा–सा स्मारक बना है। कवि बनवारी ने इस घटना का बड़े जोश पूर्ण शब्दो में वर्णन किया है।

धन्य अमर छिति छत्रपति अमर निहारो मान।

शाहजहाँ की गोद में हन्यो सलावत खान।।
उत गकार मुखते कढ़ी इतै कढ़ी जमधार।
'वार' कहन पायो नहीं भई कटारी पार।।

इनकी श्रृंगार रस की कविता में भी यमक अलंकार का प्रयोग विशिष्ट ही होता था। इनकी कविता में 'यमक' का चमत्कार देखिए –

नेह बर साने तेरे नेह बरसाने देखि,
यह बरसाने बर मुरली बजावैंगे।
साजु लाल सारी, लाल करैं लालसा री,
देखिबै की लालसा री, लाल देखे सुख पावैंगे।
तू ही उर बसी, उर बसी ना हि और तिय,
कोटि उरबसी तजि तोसों चित लावैगे।
सजे बनवारी बनवारी तन आभरन,
गोरे तन वारी बनवारी आजु आवैंगे।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रीतिकालीन हिंदी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति श्रृंगारी रचना है। यह श्रृंगारी रचना रीतिबद्ध और रीतिमुक्त दो प्रकार की हैं। जहाँ तक कलापक्ष का संबंध है यह काव्य मुक्त रूप से विरचित है और ब्रजभाषा में है। इसमें अलंकारों का बाहुल्य है और दोहा, कवित्त, सवैया आदि छन्दों का ही विनियोग हुआ है।

अभ्यासार्थ प्रश्न –

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. निम्न में से कौनसा कवि रीतिमुक्त धारा से सम्बन्धित नहीं है?
   (क) घनानन्द (ख) ठाकुर (ग) गिरधर कविराय (घ) देव
2. बिहारी किस रस के प्रधान कवि हैं ?
   (क) हास्यरस (ख) वीर रस (ग) श्रृंगार रस (घ) करुण रस
3. अमरसिंह राठौड़ की वीरता का वर्णन करने वाला कवि है ?
   (क) भूषण (ख) गुरुगोविन्द सिंह (ग) बनवारी (घ) चिन्तामणि
4. 'शिवाबावनी' के रचनाकार हैं ?
   (क) वृन्द (ख) ठाकुर (ग) भूषण (घ) गंग
5. निम्नलिखित में से किसे 'रीतिसिद्ध कवि कहा जाता है ?
   (क) बिहारी (ख) घनानन्द (ग) मतिराम (घ) देव

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. आचार्य शुक्ल ने रीतिकाल की समय सीमा क्या मानी है ?

2. भूषण के दो भाई भी प्रसिद्ध कवि थे। उनके नाम बताइए।
3. रीतिकालीन कवियों के तीन वर्ग कौन–कौन से हैं ?
4. किस रचनाकार को योद्धा, सन्त और कवि कहा गया है ?
5. राजस्थान का ऐसा कौनसा राजा था जो कवि था और जिसने अलंकार ग्रन्थ की रचना की ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. कवि गंग को जब हाथी से चिरवाया जा रहा था तो हाथी को देखकर कवि ने क्या पद पढ़ा ?
2. 'भाषा भूषण' से उद्धृत अत्युक्ति अलंकार का उदाहरण वाला पद लिखिए ?
3. रीतिकालिन धार्मिक परिस्थितियाँ बताइए ?
4. देव का शब्द शक्ति के बार में क्या कथन है ?
5. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कवि बिहारी के विषय में क्या कथन है ?

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. रीतिकालीन कलात्मक और साहित्यिक परिस्थितियों का वर्णन कीजिए।
2. रीतिमुक्त काव्य की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।
3. रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्ति, श्रृंगारिकता का वर्णन करते हुए तत्कालीन कवि का कोई श्रृंगार रस का पद लिखिए।
4. बिहारी की अलंकार योजना पर सोदाहरण टिप्पणी लिखिए।

•••